हिंसा घृणा का घर : अहिंसा अमृत का निर्झर

—डॉ० आदित्य प्रचण्डिया "दीति"
साहित्यश्री, डी० लिट्०
(कवि तथा लेखक, अपभ्रंश भाषा पर विशेष शोध
तथा शब्द कोष का निर्माण)

मैं बस की यात्रा पर था। बस के चलने में देरी थी। अन्दर मुझे घुटन महसूस हो रही थी, सो मैं बस से उतर कर बाहर चहलकदमी करने लगा। शायद दिल को कुछ राहत महसूस होने लगी थी। तभी यकायक दृष्टि मेरी, बस के पृष्ठ भाग में अंकित पंक्ति पर जा पड़ी कि 'हिंसा घृणा का घर है।'.... कन्डक्टर की विसिल बजते ही बस में अपनी सीट पर जा बैठा। बस चल दी अपनी गंतव्य दिशा को। मैं खिड़की के सहारे उन्मन सा बाहरी दृश्यों पर नजर फेंकने लगा और मेरा मन-मस्तिष्क उस पंक्ति के इर्द-गिर्द घूमने लगा। होठों ने न जाने कितनी बार यह पंक्ति दुहरायी होगी और हर बार सोच की गहराई और गहरी होती चली गई। घर पर पहुँचा। स्टडीरूम की मेज पर झुकने से पहले मैं सोच के कई पड़ाव पार कर चुका था ? बस होना क्या था ? मेरे सोच ने शब्दों की अगवानी की और शब्दों का यह गुलदस्ता इस रूप में आपके सामने है। लीजिए न, आप भी इसकी खुशबू सूँघिये।

सुख-दुःख की अनुभूति व्यक्ति-व्यक्ति की अपनी होती है। आत्मतुला की भावना का विकास हुए बिना व्यक्ति हिंसा से उपरत नहीं हो सकता। कहते हैं कि हिंसा में धर्म न तो कभी हुआ है और न कभी होगा। यदि पानी में पत्थर तैर जाय, सूर्य पश्चिम में उदय हो जाय, अग्नि ठंडी हो जाय और कदाचित् यह पृथ्वी जगत के ऊपर हो जाय तो भी हिंसा में कभी धर्म नहीं होगा। इस संसार में प्राणियों के दुःख, शोक और भय के कारणभूत जो दौर्भाग्य आदि हैं, उन सबकी जनक हिंसा है। हिंसा ही दुर्गति का द्वार है। वह पाप का समुद्र है, घोर नरक है और है सघन अन्धकार। वह आठ कर्मों की गाँठ है, मोह है, मिथ्यात्व है। हिंसा चण्ड है, रुद्र भी, क्षुद्र भी, अनार्य भी, नृशंस भी, निर्घृण भी और है महाभय भी। असत्प्रवृत्ति अर्थात् रागद्वेष एवं प्रमादमय चेष्टाओं द्वारा किये जाने वाले प्राणवध को हिंसा कहते हैं। वस्तुतः पाँच इन्द्रियाँ—श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रस, स्पर्श; तीन बल—मन, वचन, काय; उच्छ्वास-निश्वास तथा आयु—विभु ने दस प्राण कहे हैं, इनको नष्ट करना हिंसा है।

हिंसा का त्याग क्यों ? आत्मा को अहिंसक रखने के लिए या किसी को न सताने के लिए। हमारे पैर के नीचे दबी हुई चींटी का हाल वही होगा जो हाथी के पैर तले दबने से हमारा। जहाँ तक हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सके हमारे द्वारा किसी दिल को भी रंज न पहुँचे, क्योंकि एक आह सारे संसार में खलबली मचा देती है। सभी प्राणियों को दुःख अप्रिय लगता है अतः किसी को नहीं मारना चाहिए। उन पर हुकूमत भी नहीं करनी चाहिये। न उन्हें अधीन रखना चाहिए। न ही उनको परिताप देना चाहिए। उद्विग्न भी उन्हें कदापि नहीं करना चाहिए।

आत्मविमुखता हिंसा है। बाहरी स्थिति आत्मविमुखता की जननी है। सरलता आत्म-पवित्रता की सूचक है। बाह्य पर्यावरणों में जो चाकचिक्य है, बाह्य जगत के लुभावने और मोहक रंगों में जो आकर्षण है उससे आत्मा में वक्रता पैदा होती है। सरलता स्वभाव है, वक्रता विभाव है। हिंसा से उपरत वही व्यक्ति हो सकता है जो अंजुसरल है, आत्मस्थ है, धार्मिक है। जो सरल होता है, वह दूसरों के हनन में अपना हनन देखता है। दूसरों के परवश करने में अपनी परवशता देखता है, दूसरों के परिताप में अपना परिताप देखता है, दूसरों के निग्रह में अपना निग्रह देखता है और दूसरों की हिंसा में अपनी हिंसा देखता है। ये सब अहिंसा के ही तो परिणाम हैं। धार्मिक वही है जो क्रिया की प्रतिक्रिया का अनुसंवेदन करता है। जो जानता है कि जिसे मैं मारना चाहता हूँ, वह मैं ही हूँ, जिसे मैं ठगना चाहता हूँ वह मैं ही हूँ।

आज व्यक्ति दृश्यदर्शी हो गया है। दृश्य के द्रष्टा से तो वह बेखबर है। वर्तमान को प्रमाण मान अतीत और अनागत को पर्दा डाल रहा है, झुठला रहा है। वह पुण्य की क्यारी में विष का बीज वपन करने में संलग्न है। जिससे क्रूरता भी वर्द्धित हुई है। व्यक्ति के भीतर-बाहर वह मुसकाती है। समत्व-बोध लुप्त हो गया है। सर्वत्र असमत्व भाव आज प्रसर्पित है। एषणाएं व्यक्ति में घर जो कर गई हैं। आकांक्षाओं ने उसको उन्मत्त बना दिया है। आज व्यक्ति कई मीलों को मिनटों में नाप सकता है, परिधि सिमट आई है लेकिन भीतर से वह कोसों दूर-सुदूर होता जा रहा है।

दूसरों के गुणों को देखकर चिढ़ना या ईर्ष्या करना, मैं हिंसा मानता हूँ। जिस प्रकार व्यक्ति को अपने गुण अच्छे लगते हैं उसी प्रकार दूसरों के गुणों की भी कद्र करनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ गुण होते ही हैं, हमें उन्हें आगे रखकर चलना चाहिए। उनको कहने में ईर्ष्या नहीं होनी चाहिए। गुण चाहे अपने परिचित के हों या अन्य किसी के, उनको अपनाने में हिचकिचाहट क्यों ? केवल अपनी ही प्रशंसा करना क्या अभिमान का संकेतक नहीं ? दूसरों में आत्मीयता पैदा करने का, दूसरों के हृदय को जीतने का सरलतम उपाय है—दूसरों के गुणों को प्रकाशित करना। दूसरों की चापलूसी भले ही न करें किन्तु वास्तविक बात कहने में भी यदि डरें तो वह निर्भय कहाँ रहा ? अहिंसा तो निर्भयता का पाठ पढ़ाती है।

विनय आत्मा का स्वभाव है, गुण है। जो व्यक्ति इस गुण से मंडित है, ओतप्रोत है, वह हिंसक नहीं, अहिंसक होता है। उद्दण्डता या अविनय, घृणा या द्वेष को पैदा करती है। घृणा से दूरी बढ़ती है, एक दूसरे के बीच खाई खुद जाती है। द्वेष से बैर भाव या निन्दा को प्रश्रय मिलता है। व्यक्ति में मृदुता का विकास होना चाहिए। मृदुता का अर्थ दीनता नहीं किन्तु उद्दण्डता का अभाव है। दीनता कमजोरी पैदा करती है और कमजोरी व्यक्ति को पथभ्रष्ट करती है। मृदुता आत्मविश्वास बढ़ाती है और व्यक्ति को बलवान बनाती है। अतएव हिंसा; प्रतिहिंसा का मार्ग पशुता का मार्ग है। वह पशुबल है। प्रेम और सद्व्यवहार का मार्ग मानवता का मार्ग है, वह मानवीय बल है। व्यक्ति का प्रत्येक वचन और क्रियाकलाप प्रामाणिक होने चाहिए। इसका निकष सहयोग में है, अकेलेपन में नहीं। सबके साथ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहकर, सबके बीच रहकर जो प्रामाणिक रहता है वहाँ उसकी परख होती है। विरोधी हो या मित्र किसी के साथ अप्रामाणिक व्यवहार नहीं होना चाहिए। जहाँ कहनी और करनी में एकतानता न हो वहाँ हिंसा मुखर होती है। व्यक्ति जो सोचता है वही कहे, जो कहता है वही करे तो निश्चय ही वह अहिंसा के भव्य और दिव्य महल के प्रवेश-द्वार पर पहुँच जायेगा। कहनी और करनी में असमानता आत्मवंचना है। अहिंसक स्व-पर की भूमिका से ऊपर उठा हुआ होता है। वह अन्याय का पक्षधर नहीं होता। अनाचारों से समझौता नहीं करता, वह तो जीवन भर सत्य का उपासक बना रहता है।

हिंसा मारना सिखाती है और अहिंसा मरना। हिंसा बचना सिखाती है और अहिंसा बचाना। मारना क्रूरता है, मरना वीरता। बचना कायरता है, बचाना दयालुता है। अहिंसा हृदय की मृदुता है। मृदुता में दुर्बलता और विकार न आ जाय इसकी पहरेदारी सत्य को करनी होती है। हमारे मन में जब तक विचार और आचार के मध्य एक गहरे सामञ्जस्य की दीपशिखा न टिमटिमायेगी तब तक हमारी जीवन बगिया में स्नेह-सद्भावना की हरियाली नहीं लहलहायेगी। अनुकम्पा के अंकुर नहीं फूटेंगे। दया के सुरभित सुमन नहीं खिलेंगे और विश्वमैत्री के मधुर फल जन-जन के मन को आकर्षित नहीं करेंगे। वस्तुतः संसार रूप मरुस्थल में अहिंसा ही एक अमृत का निर्झर है। उसमें जीवन का एक सरस संगीत है। अहिंसा मानवता के आगम का जगमगाता आलोक है। वह तो संस्कृति का प्राण है; धर्म और दर्शन का मूलाधार है। उसमें अनन्त प्रेम है और है कष्ट सहने की अनन्त शक्ति। आइए, इस आनन्द के रथ पर आरूढ़ होकर हम स्वयं महकें और सबको महकाएँ।

मंगलकलश
३९४, सर्वोदयनगर
आगरा रोड, अलीगढ (उ० प्र०)

☐ अरे ! मनुष्य के फूल बड़े परिश्रम से खिलते हैं। गुलाब का फूल कितना संघर्ष करके; कितनी निश्चिन्तता से खिलता है और पता नहीं किस काल में वह मुरझा जायेगा ? फूल खिला है, तो मुरझायेगा जरूर, मगर मुरझाने से पहले हमें फूल की खुशबू ले लेनी है। फूल के मधु का पान कर लेना है। अपने मनुष्य-जन्म को, अपने मनुष्यत्व को, अपने संघर्ष को, अपनी ताकत को सदुपयुक्त कर लेना है। बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो सोये-सोये उस फूल को खो देते हैं। अरे ! भले मानुष ! कितना महिमावन्त है यह जीवन ! किसी भी अन्य जीवन में तुम मोक्ष की साधना नहीं कर सकते। पूर्णरूपेण यही एक जीवन ऐसा है, मनुष्यत्व ही एक ऐसा फूल है जो पूर्णतया खिल सकता है। पूर्णतया सुगन्ध फैला सकता है।

—महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर

('महावीर के महासूत्र' से)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org